॥ श्री शिवसंकल्पसूक्तम् ॥

1. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जो जाग्रत मनुष्य से दूर चला जाता है और वैसे ही जो सुप्त मनुष्य के पास लौट आता है, प्रकाशस्वरूप विज्ञानात्मा का जो ग्रहण करने वाला है, जो दूरगामी है, श्रोत्रादि समस्त प्रकाशको का भी प्रकाशक है, ऐसा मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो जाए।

2. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानाम् तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जिसके द्वारा कर्मनिष्ठ धीर पुरुषो यज्ञ के विधिविधान का, यज्ञसम्बन्धी हविष् आदि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ में कर्म करते है। तथा जो अपूर्व है, समस्त प्राणीमात्र में निवास करता है, वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो जाए।

3. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जो प्रज्ञानस्वरूप, चेतन तथा धृतिस्वरूप है। जो अमृतस्वरूप है, समस्त प्राणी में स्थित ज्योति है और जिनके वगैर कोई कर्म नहीं करता है, वह मेरा मन शिवसंकल्प युक्त हो जाए।

4. येनेदम्भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जिस मन के द्वारा यह भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी सर्व पदार्थ जाने जाते है, जिस मन के द्वारा सात होताओं के अग्निष्टोम का विस्तार होता है। वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो जाए।

5. यस्मिनृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम् तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जैसे रथचक्र की नाभि में आरे प्रतिष्ठित होते है, वैसे इस मन में ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मंत्र प्रतिष्ठित है, जिसमें समस्त प्राणियों का चित्त ओतप्रोत है, वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो जाए।

6. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयते अभीशुभिर्वाजिनः इव।
हत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जैसे कुशल सारथि लगाम के द्वारा घोड़ों को नियत्रित करता है, वैसे ही जो मन मनुष्यों का संचालन करता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित है, जरारहित तथा अत्यन्त वेगवान है, वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो जाए।